शोध मंथन, 2018 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X, Impact Factor 5.463 (SJIF)
UGC Approved Journal No. 40908

क्षयरोग के सामाजिक प्रभावों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ0 गिरीश चन्द्र पाण्डेय

एसो0 प्रोफे0, समाजशास्त्र विभाग, के0जी0के0 कालेज, मुरादाबाद

सारांश

क्षयरोग मानव इतिहास में प्राचीनतम संक्रामक रोग माना गया है जो आज समस्त वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के उपरान्त विश्व में मानव स्वास्थ्य के लिए चुनौती प्रस्तुत कर रहा है। विभिन्न एंटीबायोटिक दवाओं तथा टीकाकरण की उपलब्धता के बावजूद विश्व के क्षयरोग मुक्ति का संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ है। एच0आई0वी0, एड्स के बाद सर्वाधिक मारक क्षमता के कारण विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे एक उभरती वैश्विक समस्या घोषित किया है। 2017 के आंकड़ों के अनुसार भारत विश्व के सात अधिकतम क्षयरोगियों वाले देशों की श्रेणी में सम्मिलित है जिसके लिए अधिक जनसंख्या, शिक्षा एवं जागरूकता में कमी के साथ रोगियों की सही संख्या का आंकलन एक गम्भीर चुनौती है। क्योंकि समाज में क्षयरोग से जुडा हुआ सामाजिक कलंक और उसके परिणामस्वरूप होने वाला सामाजिक भेदभाव रोग संक्रमित व्यक्ति को उपलब्ध निदान व उपचार की प्रक्रिया से सहजता से जुड़ने नहीं देता है। यह शोध पत्र क्षयरोग से जुड़े सामाजिक कलंक के सन्दर्भ में इस रोग का विश्लेषण करने पर केन्द्रित है।

मूल शब्द– *क्षयरोग, रूग्णता, सामाजिक कलंक, जागरूकता, अवबोधन।*

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः

डॉ0 गिरीश चन्द्र पाण्डेय

क्षयरोग के सामाजिक प्रभावों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

शोध मंथन, जून 2018,
पेज सं0 55–60

Article No. 9
http://anubooks.com
?page_id=581

क्षयरोग मानव समाज के इतिहास में प्राचीनतम संक्रामक रोग के रूप में वर्णित है तथा आज भी विश्व में मानव स्वास्थ्य के लिए मुख्य संकट बना हुआ है। पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर यह माना जाता है कि क्षयरोग की मानव शरीर में उपस्थिति 2400–3400 ईसा पूर्व से पायी गयी है क्योंकि मिश्र में ममीज के रीढ़ सम्बन्धी क्षय के प्रमाण उपलब्ध है। ब्रिटेन व फ्रांस में यह विश्वास पाया जाता था कि राजा के स्पर्श मात्र से क्षयरोग से मुक्ति मिल जाती है। अतः इस रूग्णता का ऐतिहासिक कालखण्ड में महत्वपूर्ण सामाजिक प्रभाव देखा जा सकता है जो कि कला और राजनीति पर काफी स्पष्ट था (मायर 1970, डोडोर 2009)। संक्रमण के भय से इटली व स्पेन में इन रोगियों को पृथक रखा जाता था और उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके वस्त्रों व बिस्तर को जला दिया जाता था तथा कमरों को कीटाणुमुक्त करने के लिए पुनः प्लास्टर किया जाता था (डोडोर, 2009) ।

बेंजामिन मार्टिन द्वारा 1722 में सर्वप्रथम जीवाणु सिद्धान्त विकसित किया गया कि यह रूग्णता एक सूक्ष्म जीवी द्वारा उत्पन्न होता है जो वायुवाहक संक्रमण है। 1882 में राबर्ट कांख ने क्षयरोग के माइक्रोबेक्टिरिया की खोज की (डोडोर 2009)। जिसके लिए 1905 में उन्हें नोबेल से पुरस्कृत किया गया। अल्बर्ट काल्मेट तथा गुएरिन ने 1919 में बी0सी0जी0 की खोज की तथा विश्व स्वासथ्य संगठन ने 1940 में अपने क्षयविरोधी अभियान के सामूहिक टीकाकरण में इसको सम्मिलित किया। इसके उपरान्त विभिन्न अनुसंधानों द्वारा अनेक दवायें जैसे स्ट्रेप्टोमाइसिन (1946), आइसोनाइजिड (1952) तथा रिफॅमपीसिन (1965) की खोज ने इस व्याधि को आरोग्यसाध्य बनाया तथा इन दवाओं तथा टीकाकरण की उपलब्धता से विश्व के क्षयरोग मुक्त होने की संभावना दिखायी दी। किन्तु इन प्रयासों के बाद भी क्षयरोग के विरूद्ध संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ है क्योंकि यह रोग अभी भी मानवता और विश्व के लिए एक गम्भीर चुनौती बना हुआ है।

वैश्विक स्थिति

विश्व में आज भी क्षयरोग को संक्रामक रोगो में एड्स/एच0आई0वी0 के बाद मृत्यु का सर्वाधिक प्रमुख कारण माना जाता है। इसी कारण 1993 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने क्षयरोग को एक उभरती वैश्विक समस्या घोषित किया। डाट्स की रणनीति को प्रभावी लागत के साथ प्रारम्भ कर 2005–06 तक वैश्विक स्तर पर 70 प्रतिशत मामलो की खोज 85 प्रतिशत मामलो के उपचार के लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया। विश्व स्वास्थ्य संगठन के तथ्य पत्रक मार्च 2010 के अनुसार विश्व जनसंख्या का एक तिहाई भाग प्रत्येक वर्ष क्षयरोग के विषाणु से संक्रमित होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपनी 'क्षयरोग रोको' रणनीति से विश्व से क्षयरोग को 2050 तक समाप्त कने के लिए नवीन दृष्टि दी (सन्धू 2011)। यद्यपि क्षयरोग के मामलों में धीरे–धीरे कमी आ रही है किन्तु इस रोग से होने वाली मृत्यु की संख्या अभी भी काफी अधिक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि क्षयरोग के प्रतिरोध के प्रयासों में तीव्रता लायी जाये।

भारत में क्षयरोग की स्थिति

भारत को वैश्विक क्षयरोग रिपोर्ट 2017 में सात अधिकतम भार वाले देशों की श्रेणी में रखा गया है। इस रिपोर्ट के अनुसार 2016 में भारत में 27.9 लाख व्यक्ति क्षयरोग से ग्रस्त हैं,

जबकि 4.23 लाख व्यक्तियों की मृत्यु क्षयरोग के कारण हुई। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व में लगभग 6 लाख नये क्षयरोग के मामले सामने आये हैं जो बहु औषधि प्रतिरोधी हैं जिनमें से लगभग आधे मामले भारत, चीन तथा रूस गणराज्य से हैं। स्वास्थ्य सेवाओं में निजी क्षेत्र की वृहद किन्तु अनियन्त्रित भागीदारी तथा कमजोर स्वास्थ्य तन्त्र के कारण भारत जैसे देश में क्षयरोग के रोगियों का वास्तविक संख्या से कम आंकलन तथा उन्हें समुचित निदान व उपचार न प्राप्त होना अभी भी एक गम्भीर चुनौती है। इसलिए क्षयरोग को वर्तमान में भी एक अधिकतम मृत्यु दर वाला संक्रामक रोग माना गया है (स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय 2015)। उपरोक्त तथ्यों व रिर्पोटों के सन्दर्भ में यह शोध पत्र भारत में क्षयरोग के अर्थ व सामाजिक प्रभाव के अध्ययन पर केन्द्रित है।

साहित्य पुनरावलोकन

क्षयरोग के संक्रामक होने के कारण इसने समाज में स्वास्थ्य और कल्याण को गंभीरता से प्रभावित किया तथा इसका प्रसार अधिकांश विकसित और विकासशील देशों में पाया गया (रहमान 2010)। संधु (2011) ने अपने अध्ययन में इसको विश्व का प्राचीनतम रोग बताते हुए एड्स के बाद सर्वाधिक मारक रोगों की श्रेणी में रखा। प्रसाद तथा अन्य (2005) ने भारत में क्षयरोग की स्थिति तथा इसके नियन्त्रण कार्यक्रम आदि का विश्लेषण किया। विश्व स्वास्थ्य संगठन की वैश्विक रिपोर्ट 2014 के अनुसार वर्ष 2013 में अनुमानतः 90 लाख क्षयरोग के मामले पाये गये और इसके कारण लगभग 15 लाख मृत्यु हुई जो वैश्विक स्तर पर इस रोग से उत्पन्न चुनौती को दर्शाती है। सचदेवा तथा अन्य (2012) ने भारत को क्षयरोग के अधिकतम रोगियों वाले देश के रूप में बताते हुए क्षयरोग को एक निवारणीय और सुसाध्य रोग बताया। यह अध्ययन संकेत करता है कि क्षयरोग आज भी रूग्णता और मृत्युदर को अधिकतम प्रभावित करता है। स्टेक्लेनबर्ग (2004) ने अपने अध्ययन में एड्स को क्षयरोग के पुनरूत्थान के लिए उत्तरदायी बताया तथा इलाज में लापरवाही तथा समुचित अनुपालन की कमी को इसके अभियान की असफलता का कारण बताया।

क्षयरोग का समाजशास्त्रीय संदर्श

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सामान्यतः प्रचलित सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर क्षयरोग को निर्धनता और कुपोषण से उत्पन्न समस्या माना गया जो कि गन्दगी भरे वातावरण में पल्लवित होती है और जिसके मध्यम तथा उच्च वर्गों में सम्पर्क के कारण फैल जाने की संभावना थी। किन्तु इक्सवीं शताब्दी में यह विमर्श निर्धनों से हटकर तीसरे विश्व की जनसंख्या के इस रोग के शरणस्थली बन जाने पर केन्द्रित हो गया तथा इसके विकसित विश्व में फैल जाने पर विमर्श होने लगा। इस प्रकार यह विमर्श विकसित बनाम विकासशील पर केन्द्रित हो गया।

क्षयरोग के समाजशास्त्रीय पक्ष का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि समाज में इस रोग को हमेशा से एक कलंक या लांछन के रूप में देखा गया है। गॉफमैन (1963) के अनुसार ''कलंक एक चिन्ह, लक्षण या प्रतीक है जो व्यक्ति को दूसरों की तुलना में कम महत्वपूर्ण या कम अहम स्थिति पर रखता है और उसे शारीरिक रूप से कलुषित समझा जाता है।'' सामाजिक कलंक उस व्यक्ति के लिए अवांछित तथा प्रतिकूल है क्योंकि यह समाज में उसकी प्रस्थिति को निम्न कर देता है। यह पाया गया है कि सामाजिक कलंक की वजह से अनेक व्यक्ति इस रोग के उपचार

के लिए चिकित्सकीय सहायता लेने में संकोच करते हैं जो इस रोग के बढ़ने में सहायता करता है (धींगड़ा एवं खान 2010)।

गॉफमेन ने अपने अध्ययन (1963) में सामाजिक पहचान की भूमिका का सामाजिक कलंक को विकसित करने में उल्लेख किया। यह व्यक्ति की समाज में पूर्ण स्वीकार्यता में बाधा उत्पन्न कर उसे अयोग्य घोषित कर देता है जिससे उस व्यक्ति के मन में हीनता की भावना उत्पन्न होती है और वह स्वंय सामाजिक सम्पर्क से विमुख हो जाता है। ऐसे व्यक्ति समाज की अस्वीकृति का सामना करने के लिए विभिन्न रणनीतियों जैसे अपने व्यक्तित्व को जटिल रूप में प्रस्तुत करना, पहचान छुपाना आदि का प्रयोग करते हैं। उन्हें हमेशा सतर्क रहकर अपने शरीर और आवास पर उन चिन्हों का परीक्षण करना पड़ता है जो उस कलंक के लिए उत्तरदायी हैं। इस प्रकार गॉफमैन के इस सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य को क्षयरोग से पीड़ित व्यक्तियों के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन के लिए प्रयोग किया जायेगा।

उद्देश्य :

- क्षयरोग के रोगियों में व्याधि की जागरूकता और अवबोधन का अध्ययन।
- उपचार के प्रतिमानों का अध्ययन।
- क्षयरोग से जुड़े सामाजिक कलंक के प्रभावों का अध्ययन।

शोध प्रश्न :

- क्षयरोग के प्रति रोगियों का अवबोधन क्या है ?
- क्षयरोग रोगियों में उपचार व निदान का प्रतिमान क्या है ?
- क्षयरोग के कलंक का सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव है ?

पद्धति शास्त्र :

यह शोध–पत्र मुरादाबाद नगर के क्षयरोगियों पर किये गये सीमित केस अध्ययनों पर आधारित है जिसमें इस व्याधि से जुड़े सामाजिक पक्षों का विश्लेषण किया गया। इसमें मुख्यतः क्षयरोग से जुड़े कलंक के कारण रोग के उपचार, निदान तथा रोगी के सामाजिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के लिए दस केस अध्ययन उद्देश्यपरक निदर्श पद्धति द्वारा चयन किये गये जो कि क्षयरोगी थे। प्राथमिक तथ्य गहन साक्षात्कार तथा अवलोकन पद्धति से संकलित किये गये। द्वैतियक स्रोतों के रूप में, सरकारी रिपोर्ट, पुस्तकों, शोध पत्रों तथा इंटरनेट स्रोतों का प्रयोग किया।

विश्लेषण :

निदर्श में सम्मिलित क्षयरोगियों से की गयी गहन वार्ता से यह ज्ञात हुआ कि अधिकांश रोगियों द्वारा प्रारम्भिक अवस्था में रूग्णता का संज्ञान न लेना इसकी वृद्धि का कारण बना, जिसमें शिक्षा व जागरूकता की कमी महत्वपूर्ण कारक थे। निदर्श में सम्मिलित शिक्षिका जो पूर्णतः स्वास्थ्य लाभ कर चुकी है, ने प्रारम्भ में सामान्य उपचार किया किन्तु क्षयरोग के लक्षणों का प्रकोप कम न होने पर समुचित उपचार द्वारा स्वास्थ्य लाभ किया। रोग के विषय में परिवार के अतिरिक्त अन्य को जानकारी नहीं दी फिर भी जानकारों से 'सही उपचार करा लो' ऐसे अप्रत्यक्ष संकेत

मिलते रहे। सामाजिक कलंक के विषय में उसका अवबोधन यह था कि स्वास्थ्य लाभ के उपरान्त भी रोग से सम्बन्धित प्रश्नों से बचने के लिए वह अपनी मेडिकल रिपोर्ट साथ रखती है क्योंकि शिक्षित वर्ग में उपस्थित जागरूकता से उत्पन्न शंका का शमन किसी अन्य तर्क से नहीं किया जा सकता।

इस उदाहरण से भिन्न अनुभव रिक्शा चालक, मजदूर, पीतल कारीगर, फल विक्रेता व पेन्टर के थे। इन सभी के रोग में वृद्धि उनकी जागरूकता में कमी के कारण हुई और पुष्टि होने पर भी आर्थिक बाध्यता, अवकाश की कमी, अस्पताल से दूरी आदि ने रोग के बढ़ने में मदद की तथ उपचार में अनिरन्तरता बनी रही। यद्यपि निदर्श में सम्मिलित किसी भी रोगी ने सरकारी चिकित्सालय में उपचार व निदान को पहुंच के बाहर नहीं बताया। पीतल कारीगर ने अपने नियोक्ता को रोगमुक्त होने की प्रेरणा बताया जो निरन्तर उसके स्वास्थ्य प्रगति की जानकारी लेते थे। सामाजिक सम्पर्क पर रोग के प्रभाव व सामाजिक कलंक के विषय पर निम्न वर्ग में जागरूकता की कमी के कारण निकट सम्बन्धियों एवं पड़ोस में इसका प्रभाव कम दिखा। किन्तु कार्यस्थल पर अन्य लोगों के व्यवहार में अन्तर अनुभव किया जैसे खांसी के कारण रिक्शा चालक को सवारी न मिलना तथा पेन्टर ने काम से हटाये जाने की शिकायत की। सफाई कर्मचारी ने अपने क्षयरोग से पीड़ित मित्र से सम्पर्क कम न करने का उल्लेख किया जिसके कारण उसको भी इस रोग का सामना करना पड़ रहा है। छात्रा द्वारा साथी छात्राओं के व्यवहार में परिवर्तन देखा गया किन्तु पिता की मृत्यु से आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण पौष्टिक भोजन की कमी स्वास्थ्य लाभ में समस्या उत्पन्न कर रही है। साथ ही उसने अपने अनुभवों में महिलाओं पर इसके अधिक नकारात्मक प्रभाव का उल्लेख किया कि उसके पूर्ण स्वस्थ होने पर भी उसके विवाह तय होने में समस्या आ रही है। इन्हीं कारणों से थिरूवल्लवन ई0 तथा अन्य (2017) ने भी अपने निदर्श में सक्रिय रूप से रोग को छुपाने के प्रकरणों का उल्लेख किया है।

निर्दश में सम्मिलित रोगियों को प्रारम्भ में यह जागरूकता नहीं थी किन्तु उनके साथ होने वाले व्यवहार ने उन्हें यह संज्ञान दिया कि समाज इस रोग को अन्य सामान्य रोगों की तह नहीं मानता और अनेक बार किसी बहाने से उन्हें सम्पर्क से दूर रखा जाता है। दुर्खीम के पवित्र व अपवित्र के वर्गीकरण को आधार बनाकर इस सन्दर्भ में स्वस्थ को स्वच्छ/पवित्र तथा अस्वथ को अस्वच्छ/अपवित्र में वर्गीकृत किया जा सकता है। अतः क्षयरोगी और उसके शारीरिक द्रव जैसे रक्त, बलगम, श्वासवायु से सम्पर्क न रखना अपेक्षित समझा जाता है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वर्तमान में भी निम्न आर्थिक स्थिति, शिक्षा, समुचित आवास व स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच की कमी के कारण क्षयरोग के नियन्त्रण में बाधा उत्पन्न हो रही है। सरकारी चिकित्सालयों में निदान एवं उपचार के उपलब्धता के उपरान्त भी रोग की गम्भीरता न जानने के कारण तथा उपचार में अनिरन्तरता उत्पन्न होती है। सामाजिक जीवन में भेदभाव, रोग से जुड़ा कलंक तथा रोग से जुड़ी सत्य एवं भ्रामक दोनों धारणाऐं उपचार एवं रूग्णता पर खुले विमर्श का अवसर नहीं देती जिसके कारण वर्तमान में भी क्षयरेाग का उन्मूलन भारत में चुनौती बना हुआ है।

सन्दर्भ

1. बब्बर, एस0 के0 2014, द सोशियोलाजिकल डायमेन्सन आफ टी0बी0 : ए केस स्टडी आई0ओ0 एस0 आर0 जे0एच0एस0एस0, 19 (5).
2. धींगड़ा, वी0के0 एवं एस0 खान, 2009, ए सोशियोलाजिकल स्टडी आन स्टिगमा अमंग टी0बी0 पेशन्ट्स इन दिल्ली इ0ज0टी0बी0 57.
3. डोडोर इ0ए0 2008, हेल्थ प्रोफेशनल्स एक्सपोज टी0बी0 पेशेन्टस टू स्टीगमेटाइजेशन इन सोसाइटी, धाना मेड. जर्नल 42 (4).
4. गाफमैन, ई0 1963, स्टिग्मा : नोटस आन द मेनेजमेन्ट आफ स्पॉइल्ड आइडेन्टिटी, न्यू जर्सी : प्रिन्टिस हाल ।
5. मायर, जे0ए0 1927, फाइटर्स आफ फेट, वाल्टीमोर : वेबरली प्रेस ।
6. प्रसाद एच0 तथा अन्य 2005, बोवाइन टी0बी0 इन इण्डिया, https://doi.org/10.1016/j.tube.2005.08.005.
7. रहमान एम0, 2010 टी0बी0 : ग्लोबल एण्ड रिजनल सिनेरियो, ए0के0एम0एम0सी0जे0 1.
8. सन्धू जी0के0 2011, टी0बी0 : करेन्ट सिचुएशन, चेलेन्जेज एण्ड ओवर व्यू आफ इट्स कन्ट्रोल प्रोग्राम इन इण्डिया, जे0जी0आइ0डी0 3 (2).
9. सचदेवा के0एस0 तथा अन्य, 2012, न्यू विजन फार रिवाइज्ड नेशनल टी0बी0 कन्ट्रोल प्रोग्राम, आर्ठ0जे0एम0आर0 135.
10. स्टेक्लेनवर्ग जे0 तथा अन्य 2004, वेटिंग टू लांग : लो यूज आफ मेटरनल हेल्थ सर्विसेज इन कलाबो जाम्बिया, टी0एम0आईएच0 9.
11. थिरूवल्लवन इ0 तथा अन्य 2017, द साइको–सोशल चेलेन्जेस फेसिंग एम0डी0आर0 टी0बी0 पेशेन्ट्स : ए क्वालिटेटिव स्टडी सार्क जर्नल आफ टी0बी0 .... एच0आई0वी0 XIV(1).
12. डब्लू0एच0ओ0 फैक्ट शीट 2010.
13. डब्लू0एच0ओ0 ग्लोबल टी0बी0 रिपोर्ट, 2014.
14. एम0एच0एफ0डब्लू0 रिपोर्ट 2015.
15. डब्लू0एच0ओ0 ग्लोबल टी0बी0 रिपोर्ट 2017.